हमारे प्रेरणास्त्रोत बाबूजी

हज़ारों साल नरगिस अपनी बेनूरी पे रोती है
बड़ी मुश्क़िल से होता है चमन में दीदावर पैदा।

स्वभाव से बहुत ही संवेदनषील, ईमानदार, क़ानून से चलने वाले, मुसीबत में काम आने वाले, दृढ़निष्चयी, निराले, कठोर, परिश्रमी, अपनी धुन के पक्के, कभी न हार मानने वाले, दिमाग़ से तेज़, सोच–समझकर काम करने वाले, ग़रीबी, मुसीबत, तकलीफ, अभाव को समझने वाले, पुराने कांग्रेसी, देषभक्त, बड़ों का सम्मान करने वाले, फ़कीराना, अलमस्त और हमेषा कुछ नया मगर सबसे अलग करने की हिम्मत रखने वाले व्यक्तित्व थे हमारे बाबूजी स्व. श्री भँवरलाल जी गदिया। आपने षिक्षा प्रसार का जो संकल्प लिया, उसे पूरा करने में अपनी पूरी उम्र लगा दी। समाज सेवा के लिए आपका समर्पण देखते ही बनता था। आपका व्यक्तित्व व कृतित्व आज की पीढ़ी के लिए प्रेरणास्त्रोत है। यह कहना गलत न होगा कि आपने जीवनमूल्यों के लिए अपने आपको एक आदर्ष रूप में समाज के सम्मुख प्रस्तुत कर एक नई मिसाल कायम की।

उदयपुर संभाग में जिला चित्तौड़गढ़, तहसील बड़ी सादड़ी के एक छोटे–से गांव बानसी में 18 जनवरी 1924 को बसंत ऋतु के शुभ आगमन के साथ ही सेठ हजारीमल जी गदिया की हवेली पर धवल सूर्य की स्वर्ण रष्मियों की जगमगाहट के आंगन में एक गुलाब खिला, यानी कुलदीपक का जन्म हुआ। जिनका नाम भंवरलाल रखा गया। बचपन

बड़े अभाव में कटा। पुरानी पीढ़ी बिल्कुल पढ़ी–लिखी नहीं थी। गांवों में रहती थी। मुष्किल हालात थे। छोटे व्यवसाय थे। पैसी की बहुत कमी रहती थी। ऐसे में जीवनमूल्यों की पाठषाला में पढ़े व संयुक्त परिवार के सात्विक संस्कारों में पले–बढ़े भंवरलाल में वात्सल्य, ममता, स्नेह, सौहार्द्र, सहयोग, संगठन और कुछ नया कर गुज़रने के साहस जैसे मानवीय गुणों ने भरपूर आकार लिया। परतंत्र भारत, रियासतों का ज़माना, पिछड़े गाँव, गाँव में केवल प्राथमिक विद्यालय, इसमें बाबूजी के विद्यार्थी जीवन का श्रीगणेष हुआ। बाबूजी पढ़ते और अव्वल आते। प्राथमिक षिक्षा पूरी हुई, उन्हें आगे अध्ययन के लिए उदयपुर जाना पड़ा। बाबूजी ने बस्ता उठाया और चल पड़े उदयपुर की ओर। एक कंध ो पर बस्ता और दूसरे कंधे पर आवष्यक सामान, पैदल चलने का कष्ट, परिवार से दूर रहने की पीड़ा, किन्तु मन में पढ़ने की ललक और षिक्षा प्राप्ति का लक्ष्य। वे उदयपुर जाते और आते। पैदल चलते–चलते वे विचार करते, बड़े होकर चित्तौड़गढ़ जिले में षिक्षा प्रसार का सपना देखते और सोचते–

म्हूं रूकूं उठै ही मंझला व्है, म्हूं पांव मांड दूं वो गेलौ।
पढ़बा खातर हर टाबर ने, म्हनै लगाणौ है हैलो।।

संकल्प के धनी बाबूजी ने वक्त की कठिनाइयों से जूझते हुए दसवीं बोर्ड की परीक्षा अच्छे अंकों से उत्तीर्ण की और बानसी गांव के प्रथम मैट्रिक युवक होने का गौरव प्राप्त किया। आपकी मात्र 14 वर्ष की उम्र में शादी हो गई। आपने उच्च षिक्षा के लिए बहुत पापड़ बेले। स्ट्रीट लाइट में पढ़ना, धर्मषाला में रहना, भंडारे का प्रसाद खाना, घर पैदल आना–जाना,

उनके संघर्षों में शामिल था। उदयपुर से घर लगभग 75 किलोमीटर था। इस दुर्गम व लम्बे रास्ते को वे पैदल ही तय करते थे। बाबूजी परिवार में पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने सरकार में नौकरी की। इसके लिए कई बार गांव वालों के परिहास का पात्र भी बनते थे। आपने सन् 1943 में मात्र 20 साल की आयु में चित्तौड़गढ़ में अमीन के रूप में राजकीय सेवा में प्रवेष किया। फिर तहसीलदार बने। फिर जिलाधीष कार्यालय में पेषकार हुए। अंत में ऑफिस सुपरिटेंडेंट की ज़िम्मेदारी संभाली। सन् 1947 में भारत की स्वतंत्रता के साक्षी बने। गाँव–गाँव, शहर–षहर में एक नये विकास ने दस्तक दी। 1958 में आपने रेवेन्यू वकालत की परीक्षा पास की। आप रेवेन्यू बोर्ड के प्रकरणों की पैरवी करने लगे। रेवेन्यू प्रकरणों की पैठ में आज भी आपका कोई सानी नहीं है। आपके कुषाग्र बुद्धिकौषल, कर्त्तव्य– परायणता व त्वरित कार्यषैली के कीर्तिमान ने जिला कलेक्टर समेत तमाम कर्मचारी वर्ग का आपको प्रियपात्र बना दिया। सभी आपको बाबूजी कहने लगे। हर अधिकारी के चहेते बाबूजी। हर कर्मचारी के चहेते बाबूजी। अति लोकप्रिय बाबूजी। आप हमेषा सरकारी कायदे–क़ानून से चलते थे। आपका परिवार इसके बिल्कुल उलट। इस बीच तालमेल बनाते हुए पूरे परिवार को आपने आगे लाना था। यह चुनौती बड़ी थी। परन्तु आपने बड़ी सरलता से पूरे परिवार का विकास किया। जहां रहे अपना मक़ान बनाया। हर वक़्त परिवार के हर व्यक्ति को पढ़ाने–लिखाने एवं आगे बढ़ाने में हर संभव मदद की। सामाजिक तौर पर भी परिवार का मान–सम्मान व प्रतिष्ठा बढ़ाने का काम किया। कुछ समय के लिए पार्ट टाइम बसों का धंधा भी किया। उसको ठीक से सफल बनाने के लिए भी अथक प्रयास किये। रात–दिन कड़ी मेहनत की।

समय के साथ क़दम मिलाते हुए आप वर्ष 1977 में कार्यालय अधीक्षक के पद से सेवानिवृत्त हुए। सरकार से सेवानिवृत्त होने के बाद बाबूजी ने पेंषनर्स समाज के लिए भी बड़ा काम किया। सभी मित्रों के हरदिल अजीज़ रहे। युग ने करवट ली। सूझबूझ के धनी बाबूजी ने सन् 1979 में मार्बल उद्योग में प्रवेष किया। बड़े भाई साहब गोविन्द जी के साथ देखते ही देखते व्यवसाय फलने–फूलने लगा। यहां भी आपका अंदाज़ वही कड़ी मेहनत, ईमानदारी एवं विष्वसनीयता का था। इसलिए सफलता आषा से भी अधिक मिली। कमाल देखिये, आपने जिस पत्थर को छुआ, सोना बन गया। आपके नेतृत्व में चित्तौड़गढ़ के मार्बल व्यवसाय ने नई प्रगति की। धीरे–धीरे चित्तौड़गढ़ मार्बल की देष–विदेष में बड़ी मण्डी बन गया। मार्बल यहां से निर्यात होने लगा। चित्तौड़गढ़ की राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में पहचान बनी। इधर, वर्ष 2000 में दिल का ऑपरेषन कराने के लिए बाबूजी दिल्ली आये। हमारे साथ ग़ाज़ियाबाद में मेवाड़ इंस्टीट्यूट जाना हुआ। वहां का वातावरण और षिक्षा के क्षेत्र में ऐसा अनूठा प्रयास देखकर बाबूजी गदगद हो उठे। आपने वहीं तय किया कि हमें अपनी मातृभूमि पर भी ऐसा कुछ करना चाहिए। बाबूजी षिक्षा के क्षेत्र में अलख जगाना चाहते थे। बालिका षिक्षा प्रसार का शंखनाद करना आपका मकसद था। वे षिक्षा को सर्वसुलभ बनाने की संकल्पना भूले नहीं थे। वे बालकों को बस्ता लिये देखते, उनको अपने बचपन के दिन याद आ जाते। वे उपयुक्त अवसर की तलाष में थे। आखिर, वह शुभ दिन आ ही गया। जिला कलेक्टर मालोविका पंवार का आगमन था। उदयपुर में संभाग स्तर की महिला सषक्तीकरण पर सेमिनार का आयोजन था। बाबूजी उदयपुर में महिला सषक्तीकरण

सेमिनार में सहभागी बने। ज्येष्ठ पुत्र गोविन्दलाल गदिया एवं डॉ. अषोक कुमार गदिया भी साथ थे। सेमिनार में विविध चर्चाएं हुईं, सम्बोधन हुए और प्रस्ताव आए। जिला कलेक्टर मालोविका जी की बाबूजी के साथ बालिका षिक्षा के प्रसार पर चर्चा हुई। राज्यपाल सुश्री मृदुला सिन्हा ने सुझाव दिया कि गदिया जी महिला सषक्तीकरण के लिए कुछ अनूठा कार्य करो। बाबूजी के दोनों पुत्र भी इस आग्रह पर सहमत थे। **होनहार वीरवान के होत चीकने पात**, बाबूजी ने वहीं घोषणा कर दी। एकदम बोल उठे– **मैं चित्तौड़गढ़ जिले में बालिका शिक्षा प्रसार का बीड़ा उठाता हूँ।** सभाकक्ष तालियों से गूंज उठा। बस फिर क्या था, चित्तौड़गढ़ में मेवाड़ एजुकेषन सोसायटी की स्थापना हुई। दिनांक 15 अक्टूबर 2003 का शुभ दिन संस्था के भवन का बाबूजी के अभिन्न मित्र राजस्थान के पूर्व मुख्यमंत्री श्री हीरालाल जी देवपुरा के करकमलों से षिलान्यास हुआ। निर्माण कार्य तेजी से बढ़ा। बाबूजी ने हर नये एवं नूतन प्रयोग का स्वागत किया और उसको सफल बनाने में अपना पूर्ण सहयोग किया। मेवाड़ गर्ल्स कॉलेज देष का पहला ऐसा कॉलेज बना जिसने महिलाओं को अच्छी षिक्षा के साथ–साथ वोकेषनल एजुकेषन देने यानी महिलाओं को हुनरमंद बनाने का भी बीड़ा उठाया। मेवाड़ एजुकेषन सोसायटी, चित्तौड़गढ़ का भवन महिला सषक्तीकरण के लिए बालिकाओं के नाम हो गया। बाबूजी की सूझबूझ से मेवाड़ एजुकेषन सोसायटी का षिक्षा प्रसार का शुभ संदेष गाँव–गाँव और घर–घर पहुंचा। बालिकाएं पढ़ने के लिए उमड़ पड़ीं। आज बालिकाएं अनेक पाठ्यक्रमों में अपना करियर संवार रही हैं। अत्याधुनिक सुविधाएं। साफ–सुथरी, षिक्षा सम्बंधी आवष्यक वस्तुएं, सुसज्जित कक्षाएं। विषाल पुस्तकालय

एवं वाचनालय। आधुनिक प्रयोगषालाएं, जहां नित् नूतन सीखने और षिक्षण पाने का नवल स्वप्न साकार हो रहा है। बालिकाएं उपकरणों पर व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त कर रही हैं। कहा जाये तो, यही तो थी कोठारी कमीषन की संकल्पना। उसमें कहा था **''भारत का निर्माण कक्षाओं में हो रहा है। यह बालिकाओं के जीवन को संवारने की एक युग चेतना है।''** योग्य षिक्षक–षिक्षिकाओं के मार्गदर्षन में अध्ययनरत छात्राएं बाबूजी के संकल्प को साकार कर रही हैं। वे कक्षाओं में उज्ज्वल भविष्य के सपने बुन रही हैं। उनके चेहरे की मुस्कान बताती है कि जो सपना बाबूजी ने देखा था, वह यही है। हां, यही तो है महिला सषक्तीकरण का जीता–जागता अद्भुत अभियान। यही है मेवाड़ एजुकेषन सोसायटी का आंगन, जहां बालिकाओं का हौसला बुलंद होता है। यहां से वे ऊँची उड़ान भरने की तैयारी करती हैं, जिसे षिक्षाषास्त्री सर्वांगीण विकास कहते हैं। यहां साहित्यिक और सांस्कृतिक कार्यक्रमों में वे भाग लेती हैं। ओजस्वी वाणी में भाषण देती हैं। मंच पर अभिनय करती हैं। जीवनमूल्यों को संवारती हैं और देषप्रेम का शंखनाद करती हैं। इस प्रकार बाबूजी के सपनों को साकार करती हुई यह मेवाड़ एजुकेषन सोसायटी देष को आदर्ष नागरिक उपलब्ध करवाने में अग्रणी है। इस सोसायटी ने हमेषा षिक्षा के क्षेत्र में, साहित्यिक क्षेत्र में, सांस्कृतिक क्षेत्र में, सामाजिक और धार्मिक क्षेत्र में नये कीर्तिमान स्थापित किये हैं।

महिला सषक्तीकरण की ओर बढ़ते ये क़दम साबित करते हैं कि मेवाड़ एजुकेषन सोसायटी जनतांत्रिक जीवनमूल्यों व भारतीय संस्कारों से देष की भावी पीढ़ी को किस प्रकार से संवार रही है, इसे समाज के लिए किस प्रकार से तैयार कर रही है। सही अर्थों में महिला सषक्तीकरण का

पर्याय है मेवाड़ एजुकेषन सोसायटी। जिसके संस्थापक बाबू भंवरलाल जी गदिया के व्यक्तित्व में समाहित था मेवाड़ के अद्वितीय दानी रत्न भामाषाह का प्रतिरूप। सदैव समाज व देषहित अनुदान में बाबूजी अग्रणी भूमिका निभाने में सक्रिय रहे। यहां तक कि मेवाड़ विष्वविद्यालय की संस्थापना की योजना के बारे में जब बाबूजी से चर्चा की तो वह इस योजना से अति प्रसन्न हुए और उन्होंने तन–मन–धन से इसके निर्माण में अपना पूर्ण सहयोग दिया। धार्मिक कार्यक्रम हो या विद्यालय भवन में निर्माण का पावन कार्य, छात्रों में पुस्तक वितरण करना हो या पोषाक वितरण, बाबूजी सदैव अग्रणी रहे। इसका साक्षी है शास्त्रीनगर में मंदिर निर्माण का कार्य और विद्यालय भवन का निर्माण। इनके विकास में उदारमना बाबूजी की महत्वपूर्ण भूमिका रही। आध्यात्मिक प्रेरणा से ओतप्रोत बाबूजी। भागवत पाठ के आयोजन हों या तुलसी विवाह के आयोजन, बाबूजी अग्रणी रहे। आपके चेहरे की मुस्कान, वंचित समाज को खुषी प्रदान करने के बाद और भी मुखर हो उठती थी। आत्मसंतोष के भाव आपकी निर्मल और मौन अभिव्यक्ति की नई सूचना देते थे। तुलसी विवाह के कार्यक्रम में यही कुछ भाव आपमें देखने को मिले।

अपनी धुन के धनी बाबूजी, जनतांत्रिक जीवनमूल्यों के धनी बाबूजी, महिला षिक्षा के अग्रदूत बाबूजी, समाजसेवा को समर्पित बाबूजी, मेवाड़ एजुकेषन सोसायटी के संस्थापक बाबूजी, बालिका षिक्षा प्रसार के अनुकरणीय आदर्ष बाबूजी, महिला सषक्तीकरण के कीर्तिपुरुष बाबूजी, चित्तौड़गढ़ जिले में षिक्षा के विकास के इतिहास को स्वर्णाक्षरों में लिखकर इसे नया आयाम देने वाले बाबूजी। हम आपके कृतज्ञ हैं कि आपने हमें ऐसी अनूठी राह पर चलना सिखाया। हम आपकी सौगंध खाते

हैं कि युगों–युगों तक मेवाड़ एजुकेषन सोसायटी षिक्षा जगत के उच्च षिखर पर अपनी यष–कीर्ति पताका फहराती रहेगी।

आपको शत–षत नमन! आपकी पावन स्मृतियों को कोटिषः वंदन और आपके अषेष सात्विक मंगल कार्यों का अभिनंदन!

आपके प्रति सदैव श्रद्धानत–

गोविन्द लाल गदिया (पुत्र)
डॉ. अशोक कुमार गदिया (पुत्र)
राधाकृष्ण गदिया (पुत्र)
शंकरलाल गदिया (पुत्र)
कैलाश चन्द गदिया (पुत्र)
एवं समस्त गदिया परिवार

1. मंज़िल की ओर

एक बार की बात है। एक गुरु सौ वर्ष के हुए तो उन्होंने तय किया कि अब योग समाधि लगाकर देह त्यागना है। लेकिन इससे पहले आश्रम का उत्तराधिकारी घोषित करना बाकी था। गुरु की सेवा में बीस वर्षों से एक शिष्य पूरी निष्ठा और समर्पण के साथ जुटा था। गुरु ने उसे आज्ञा दी कि वह पहाड़ स्थित आश्रम से नीचे तराई में जाए और अध्यात्म की राह पर चलने के इच्छुक और तत्पर सौ युवकों को लेकर आए। शिष्य गुरु को प्रणाम करके चला। मार्ग में उसके मन में कई प्रश्न उठे। मन में आया कि गुरु मुझे ही उत्तराधिकार देंगे तो, मेरे पीछे इतने शिष्य और सहयोगी छोड़कर क्यों जा रहे हैं।

लेकिन गुरुजी ने कहा है तो गलत होने का प्रश्न ही नहीं उठता। आखिरकार शिष्य नीचे तराई में आकर, सौ युवकों को एकत्र करके आश्रम के लिए रवाना हो गया। मार्ग में उसने देखा कि एक राज्य में मातम मचा था। पता चला कि राज्य की अस्सी कन्याओं की बारात को लेकर एक जहाज समुद्र में डूब गया है। राजा ने घोषणा कर दी कि जो उन कन्याओं से विवाह करेगा, उसे अपार संपत्ति मिलेगी। यह सुनते ही सौ में से अस्सी युवक शिष्य का साथ छोड़ विवाह करने चल पड़े। बचे हुए बीस युवकों में से उन्नीस युवक एक–एक कर रास्ते की कठिनाइयों से हार मानकर लौटते गए। जब शिष्य अपने गुरु के पास पहुंचा तो उसके साथ मात्र एक युवक था। जाते ही उसने गुरु से कहा – गुरुवर, शुरू में मेरे मन में कई संदेह उठ रहे थे, पर अब मैं समझ गया आपने क्यों सौ लोगों को लाने के लिए कहा था। मैं यह जान गया हूं कि मंजिल की ओर निकलते सौ हैं, पर पहुंचता एक ही है।' उसने गुरु के चरण पकड़कर उनसे क्षमा मांगते हुए अपनी गलती स्वीकार की। गुरू ने उसे हृदय से लगा लिया।

2. बालिका का दान

एक बार चीन के चांग चू नामक प्रदेश में वहां के एक महंत ने भगवान बुद्ध की एक मूर्ति बनवाने के लिए धन इकट्ठा करने के प्रयोजन से अपने शिष्यों को घर–घर भेजा। लोगों ने श्रद्धानुसार धन दिया। सभी शिष्य अलग–अलग स्थानों पर अलग–अलग व्यक्तियों से धन एकत्र कर रहे थे। एक शिष्य को एक छोटी–सी बालिका मिली। बालिका का नाम तिन–नू था। तिन–नू के पास एक सिक्का था। वह उस शिष्य को एक सिक्का दान कर रही थी ताकि भगवान बुद्ध की मूर्ति बनने में उसका भी सहयोग शामिल हो जाए।

किंतु शिष्य तिन–नू के हाथ में एक सिक्का देखकर नाक–भौंह सिकोड़ने लगा और उसने बालिका से उस सिक्के को नहीं लिया। कुछ दिनों के बाद धन की पूर्ति होने पर भगवान बुद्ध की सुंदर मूर्ति का निर्माण होना प्रारंभ हो गया। किंतु बार–बार प्रयासों के बाद भी मूर्ति सुंदर ढंग से पूर्ण नहीं हो पा रही थी। किसी को भी यह समझ नहीं आ रहा था कि आखिर मूर्ति पूर्ण एकाग्रता व लगन से बनाने के बाद भी सुंदर क्यों नहीं बन पा रही है। आखिरकार महंत ने सभी शिष्यों को बुलाया और उनसे दान एकत्र करते समय घटे प्रसंगों को सुनाने को कहा। कुछ देर बाद एक शिष्य के वृत्तांत में तिन–नू बालिका का प्रसंग आया। तिन–नू बालिका का प्रसंग सुनकर महंत को झटका लगा और उन्होंने शिष्य से उसी समय बालिका के पास जाकर क्षमा मांगने और वह एक सिक्का लाने का आदेश दिया। आदेश सुनकर शिष्य ने बालिका तिन–नू से क्षमा मांगकर सहर्ष वह सिक्का ले लिया। कहते हैं कि धातुओं के घोल में उस सिक्के को मिला देने पर सहज ही एक सुंदर मूर्ति का निर्माण हो गया। आश्चर्य का विषय यह है कि अभी भी उस बुद्ध प्रतिमा के हृदयभाग के ठीक ऊपर एक सिक्के जैसा उभार है।

3. असली चुनौती

एक बार की बात है। गौतम बुद्ध अपने कुछ शिष्यों के साथ किसी शहर में प्रवास कर रहे थे। जब उनके शिष्य शहर घूमने निकले तो लोगों ने उन्हें बहुत बुरा–भला कहा। वे क्रोध में भरकर बुद्ध के पास लौटे। बुद्ध ने पूछा, 'क्या बात है, आप सब तनाव में क्यों हैं।'

उनका एक शिष्य बोला, 'हमें यहां से तुरंत प्रस्थान कर देना चाहिए। क्योंकि वहां रहना उचित नहीं है, जहां हमारा आदर न हो। यहां तो लोग दुर्व्यवहार के सिवा कुछ जानते ही नहीं।' इस पर बुद्ध मुस्कुराकर बोले, 'क्या किसी और जगह पर तुम सद्व्यवहार की अपेक्षा करते हो?' दूसरा शिष्य बोला, 'कम से कम यहां से तो भले लोग ही होंगे।' बुद्ध बोले, 'किसी स्थान को केवल इसलिए छोड़ना गलत है कि वहां के लोग दुर्व्यवहार करते हैं। हम तो संत हैं। हमें ऐसा करना चाहिए कि उस स्थान को तब तक न छोड़ें जब तक वहां के हर व्यक्ति के व्यवहार को सुधार न डालें। वे हमारे अच्छा व्यवहार करने पर सौ बार दुर्व्यवहार करेंगे। लेकिन कब तक? आखिर उन्हें सुधरना ही होगा और उत्तम प्राणी बनने का प्रयास करना ही होगा। संभवतः संतों का वास्तविक कर्म तो ऐसे ही लोगों को सुधारने का है। असली चुनौती तो विपरीत परिस्थितियों में स्वयं को साबित करना ही होती है।' तब बुद्ध के प्रिय शिष्य आनंद ने पूछा, 'उत्तम व्यक्ति कौन होता है?' इस पर बुद्ध ने जवाब दिया, 'जिस प्रकार युद्ध की ओर बढ़ता हुआ हाथी चारों ओर के तीर सहते हुए भी आगे चलता जाता है, ठीक उसी तरह उत्तम व्यक्ति भी दुष्टों के अपशब्द को सहन करते हुए अपना कार्य करता चलता है। स्वयं को वश में करने वाले प्राणी से उत्तम कोई हो ही नहीं सकता।' शिष्यों ने उस शहर से जाने का इरादा त्याग दिया। इसका परिणाम हुआ कि दुर्व्यवहार सद्व्यवहार में बदल गया।

4. सत्य का सार

एक दिन सुबह–सुबह गुरुजी ने अपने सभी शिष्यों को बुलाया। उनमें एक नया साधारण भक्त भी था जिसकी गुरुजी के प्रति सच्ची श्रद्धा थी। सभी बड़े खुश थे कि आज गुरुदेव के साथ ध्यान का अभ्यास करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। इस अवसर को कोई भी नहीं गंवाना चाहता था। सभी ध्यानमग्न थे कि एक बच्चे की बचाओ–बचाओ की आवाज सुनाई पड़ी। बच्चा नदी में डूब रहा था।

आवाज सुनकर गुरुदेव की आंखें खुल गईं। उन्होंने देखा कि वही साधारण भक्त बच्चे को बचाने के लिए नदी में कूद गया। वह किसी तरह बच्चे को बचाकर किनारे ले आया। बाकी सभी शिष्य आंखें बंद किए ध्यानमग्न थे। ध्यान का समय खत्म होने के बाद गुरुजी ने उन शिष्यों से पूछा, क्या तुम लोगों को डूबते हुए बच्चे की आवाज सुनाई नहीं पड़ी थी? शिष्यों ने कहा, हां गुरुदेव, सुनी तो थी। गुरुजी ने पूछा, तब तुम्हारे भीतर क्या विचार उठा था? शिष्यों ने कहा, 'हम लोग ध्यान में डूबे थे और आपके सानिध्य में ऐसा अवसर बार–बार नहीं मिलता।' गुरुजी ने कहा, लेकिन तुम्हारे बीच में से एक भक्त बच्चे को बचाने के लिए ध्यान छोड़कर नदी में कूद पड़ा। गुरुजी ने सभी को समझाते हुए कहा, 'तुमने डूबते हुए बच्चे की पुकार अनसुनी कर दी। पूजा–पाठ, धर्म–कर्म का एक ही उद्देश्य होता है प्राणियों की रक्षा करना। तुमने अभी तक मौखिक ज्ञान ही अपने भीतर भरा है। इसलिए धर्मशास्त्रों, व्याकरणों, धर्म–कर्म आदि में ही उलझे रहे, लेकिन सत्य का सार नहीं समझ सके। परोपकार और संकट में फंसे दूसरे की सहायता करने से बड़ा कोई भी धर्म नहीं है। पूजा–पाठ, ध्यान का असल संदेश मानवता की सेवा करना है।' गुरुजी ने उस भक्त को, जिसने डूबते हुए बच्चे को बचाया था, आशीर्वाद देकर कहा, 'शाबाश वत्स! तेरी पूजा सफल हुई। मैं सदैव तेरे साथ हूं।'

5. एक गुरु दो शिष्य

ऋषि धौम्य के आश्रम में कई छात्र रहते थे। वह उन्हें पूरी तत्परता से पढ़ाते, साथ ही उनकी कड़ी परीक्षा भी लेते रहते थे। इन परीक्षाओं में अलग–अलग कसौटियां तय की जातीं और देखा जाता कि विद्यार्थी सीखी गई विद्या और गुरु के प्रति कितना निष्ठावान है। एक दिन मूसलाधार वर्षा हो रही थी। गुरु ने अपने एक छात्र आरुणि से कहा, 'बेटा! खेत की मेड़ टूट जाने से पानी बाहर निकला जा रहा है, सो तुम जाकर उसे बांध आओ।' आरुणि तत्काल उठ खड़ा हुआ और खेत की ओर चल दिया। पानी का बहाव तेज था। आरुणि ने मिट्टी जमाने की कोशिश की, वह बहाव रुका नहीं। कोई उपाय न देख आरुणि उसी स्थान पर लेट गया। इस प्रकार उसने पानी को रोक दिया, मगर उसे खुद वहां लेटे रहना पड़ा। बहुत रात बीत जाने पर भी जब वह न लौटा तो धौम्य को चिंता हुई। वह खेत पर उसे ढूंढने पहुंचे। देखा तो आरुणि पानी को रोके मेड़ के पास लेटा था। देखते ही गुरुजी भाव विभोर हो गए। कुछ दिनों बाद धौम्य ने अपने एक और शिष्य उपमन्यु की परीक्षा ली। उसे गायें चराते हुए अध्ययन करते रहने की आज्ञा दी, पर उसके भोजन का कुछ प्रबंध न किया और देखना चाहा कि आखिर वह किस प्रकार काम चलाता है। उपमन्यु भिक्षा मांगकर भोजन करने लगा। वह भी न मिलने पर गौओं का दूध दुहकर अपना काम चलाने लगां एक दिन धौम्य ने उसे टोका, 'बेटा उपमन्यु, एक छात्र के लिए उचित है कि वह आश्रम के नियमों का पालन करें और गुरु की आज्ञा के बिना कोई कार्य न करें।' उसने अपनी भूल स्वीकार की और कहा, 'मैं वचन देता हूं कि आश्रम की व्यवस्था का पालन करूंगा।' उसने कई दिन तक निराहार रहकर अपने प्रण का पालन किया तो धौम्य प्रसन्न हो गए।

6. बुद्धि पर तरस

काशी में एक बड़ा सेठ रहता था, लेकिन वह बहुत कंजूस था। एक बार उसने घर की रखवाली के लिए एक चौकीदार रखने का विचार बनाया। लेकिन जो आदमी मिलता वह उससे बहुत ज्यादा पैसे मांगता। एक दिन उसके पास एक आदमी आया। वह शरीफ, ईमानदार और ताकतवर था, लेकिन बुद्धि से थोड़ा कमजोर था। सेठ ने सोचा, चौकीदारी के लिए बुद्धिमान की जरूरत ही क्या है। उसने उसे रख लिया। एक दिन सेठ को बाहर जाना पड़ा। जिस दिन सेठ बाहर गया, संयोग से उसी रात उसके घर में चोर घुस गए। चौकीदार अकेला उनका मुकाबला नहीं कर सका, चोरों ने उसे बांध दिया। जब वे सारा सामान लूटकर जाने लगे तो चौकीदार बोला, 'भाई, तुमसे एक प्रार्थना है। जो सामान तुम ले जा रहे हो, वह सब सेठानी की लड़की का है। उसकी शादी होने वाली है और सेठानी ने बड़ी मेहनत से सारी खरीदारी की है। तुम लोग वह सामान छोड़ दो और उसके दाम के बराबर रुपये ले लो।' चोरों ने पूछा, 'रुपया कहां है?' 'तिजोरी में।' चौकीदार ने कहा। चोरों ने तिजोरी तोड़कर रुपया भी लूट लिया। फिर रुपये और सामान लेकर जाने लगे तो चौकीदार ने कहा, 'सामान क्यों ले जा रहे हो? रुपये कम पड़े हों तो तहखाने से मोहरें भी ले लो।' उसने तहखाने में जाने का रास्ता भी बता दिया। चोर मोहरें लूटकर सामान सहित जाने लगे तो चौकीदार ने फिर कहा, 'भाइयों अब तो सामान छोड़ दो।' चोर उसकी मूर्खता पर हंसने लगे। सेठ लौटकर आया तो किस्सा सुनकर चौकीदार को मारने दौड़ा। तभी एक संत वहां पधारे। उन्होंने पूरी बात सुनी तो बोले, 'सेठ जी, इसमें चौकीदार का क्या दोष? उसने तो अपनी बुद्धि के अनुसार सही काम किया। तरस तो आपकी बुद्धि पर आता है कि आपने चौकीदार रखने में भी कंजूसी की।

7. ग़लतियों से सीखना

आईबीएम के एक युवा एग्जीक्यूटिव ने एक नया प्रोडक्ट तैयार किया। लेकिन दुर्भाग्यवश वह प्रोडक्ट बाजार में चल नहीं पाया और कंपनी को एक करोड़ डॉलर का घाटा हो गया। यह देखकर युवा एग्जीक्यूटिव बहुत घबरा गया। वह समझ गया कि अब इस प्रतिष्ठित कंपनी का हिस्सा नहीं रह सकेगा। ये सब सोच–सोचकर वह बहुत परेशान हो गया। तभी उसके पास कोई यह संदेश लेकर आया कि उसे आईबीएम के संस्थापक टॉम वॉटसन ने तुरंत अपने केबिन में बुलाया है। युवक डरते–डरते उनके केबिन में जा पहुंचा। वॉटसन उसे देखते ही बोले, 'आओ यंग मैन बैठो! मुझे तुमसे एक विषय पर जरूरी बात करनी है।' युवा बोला, 'मुझे मालूम है कि आप मुझसे किस विषय पर बात करेंगे। आप मेरा इस्तीफा चाहते हैं।' यह सुनकर टॉम वॉटसन ने कहा, 'यंग मैन, तुम ये कैसा मजाक कर रहे हो? हमने तुमको जीवन के साथ ही करियर की हर स्थिति में संघर्ष करने के लिए ट्रेंड किया है। और इस प्रयास में हाल ही में हमारी कंपनी ने एक करोड़ डॉलर खर्च किए हैं।' टॉम वॉटसन की बात सुनकर एग्जीक्यूटिव आश्चर्यचकित रह गया और बोला, 'सर, मैं इस शिक्षा को व्यर्थ नहीं जाने दूंगा और कंपनी को ऊंचाइयों तक पहुंचाने के लिए अपना सर्वश्रेष्ठ प्रदान करूंगा।' टॉम वॉटसन मुस्करा कर बोले, 'कंपनी हर कर्मचारी से यही उम्मीद करती है। हमें गलतियों से सीखकर आगे बढ़ना चाहिए। ऐसा नहीं कि गलती हो जाने पर अफसोस करने में ही सारा समय व्यर्थ कर दें। मैंने यहां तुम्हें आगे के कामों के लिए शुभकामनाएं देने के लिए बुलाया है। मेरी शुभकामनाएं तुम्हारे साथ हैं। अब तुम अपना काम शुरू कर सकते हो।' युवा दुगने उत्साह के साथ अपनी सीट पर आकर बैठ गया और कंपनी को सफल बनाने के लिए नई योजनाएं बनाने लगा।

8. महिलाओं को मताधिकार

एमेलाइन को बचपन से ही राजनीति का बहुत शौक था। उनके माता–पिता स्वयं तो राजनीति में सक्रिय थे, लेकिन चाहते थे कि उनकी बेटी राजनीति के क्षेत्र में प्रवेश न करे। उसके लिए उन्हें आम महिला का जीवन ही ठीक लगता था। पर एमेलाइन आठ वर्ष की उम्र में ही नारी–मताधिकार आंदोलन से जुड़ गई। वह ब्रिटेन में मताधिकार पर नारियों के हक की आवाज बुलंद करने लगीं। बीस वर्ष की उम्र में उनका विवाह हुआ। उन्होंने 'विमिंस फ्रैंचाइजी लीग' की स्थापना की और महिला मताधिकार के लिए अपना आंदोलन तेज कर दिया। मैंचेस्टर में गरीबी तो थी ही, वह गरीबों के विकास के लिए कानूनी लड़ाई भी लड़ने लगीं। सन् 1903 में उन्होंने एक मुखर 'विमिंस सोशल एंड पॉलिटिकल यूनियन' का गठन कर लिया। इस संगठन की महिलाएं उग्र प्रदर्शन करती थीं ताकि लोगों और सरकार का ध्यान उनकी ओर आकृष्ट हो। वे भूख–हड़ताल पर बैठतीं तो उन्हें जबर्दस्ती खिला–पिला दिया जाता। अक्सर उन्हें गिरफ्तार भी कर लिया जाता। 1912 में तो प्रदर्शन के दौरान खिड़कियां तोड़ने के आरोप में ही एमेलाइन को जेल भेज दिया गया। 1914 में पहला विश्वयुद्ध छिड़ गया। महिला आंदोलन अस्थायी रूप से स्थगित कर दिया गया। सरकार ने एमेलाइन सहित सभी आंदोलनकारियों को रिहा कर दिया। सारे पुरुष लड़ने चले गए तो पुरुषों के लिए आरक्षित काम महिलाएं करने लगीं। एमेलाइन महिला मताधिकार में बराबरी के लिए संघर्ष करती रहीं। 1918 में 30 साल से अधिक की महिलाओं को मताधिकार व 2 जुलाई 1928 को महिलाओं को पुरुषों के समान 21 वर्ष की आयु में वोट डालने का अधिकार भी मिल गया। लेकिन इससे दो सप्ताह पहले 14 जून 1928 को एमेलाइन का निधन हो गया।

9. ईमानदारी का पुरस्कार

सिंगापुर में अंग्रेज डॉ. सिसिल ब्राउन एक बड़े मकान में अकेले रहते थे। अपने यहां पले जानवरों को वह बच्चों की तरह प्यार करते थे। चौदह साल का एक लड़का मिग ब्राउन के कपड़े धोता और प्रेस करता था। वह भी अकेला रहता था। तभी अंग्रेजों और जापानियों में युद्ध छिड़ गया। युद्ध के दौरान मिग घायल हो गया। वह डॉक्टर के पास आया। डॉक्टर ने उसकी मरहम–पट्टी की और दवा देकर कहा, 'तुम मेरे कुछ कपड़े लेते जाओ, उन्हें धोकर प्रेस करके दे जाना।' दो दिन बाद सिंगापुर पर जापानियों का कब्जा हो गया। अन्य कैदियों के साथ मिग को भी जेल में डाल दिया गया। जापानी सेना ने डॉक्टर ब्राउन को भी कैद करके जेल में भेज दिया। तीन साल बाद सिंगापुर पर फिर से अंग्रेजों ने कब्जा कर लिया। जापानियों द्वारा बंदी बनाए गए सभी कैदी छूट गए। डॉक्टर ब्राउन और मिग भी जेल से छूटकर घर लौट आए। मिग ने घर पहुंचकर सबसे पहले डॉक्टर ब्राउन के कपड़े धोए और उन्हें सुखा कर प्रेस किया। कपड़ों का पैकेट लेकर वह डॉक्टर के घर पहुंचा। पहले उसने उन्हें सलाम किया फिर कपड़ों का बंडल उन्हें थमा दिया। डॉक्टर ब्राउन ने उससे पूछा, 'इसमें क्या है?' उसने मायूसी से कहा, 'सर, इस बार मुझे बहुत देर हो गई। जापानियों ने मुझे बंदी बनाकर जेल में डाल दिया था। याद है न आपको, तीन साल पहले आपने ये कपड़े मुझे धोने के लिए दिए थे। ये रहे आपके कपड़े। मैं परसों ही जेल से छूटा हूं।' उसकी ईमानदारी देखकर ब्राउन की आंखें नम हो गईं। उन्होंने कहा, 'मेरे बच्चे, मैं भी जेल से कल ही छूटकर आया हूं। तुम्हारी ईमानदारी देखकर मैं अपना सारा दर्द भूल गया। मिग, अब तुम अनाथ नहीं हो। तुम मेरे साथ रहोगे और कपड़े नहीं धोओगे। कल से तुम स्कूल जाना।'

10. या तो सर्वश्रेष्ठ या कुछ नहीं

डैमलर बचपन से ही ऐसा वाहन बनाना चाहते थे जो खुद चल सके। एक दिन उन्होंने कार बनाने का निश्चय किया। वह दिन–रात कार के लिए इंजन बनाते रहते। सन् 1886 में उनकी मेहनत रंग लाई। उन्होंने चार पहियों की एक कार बनाई प्रारंभ में डैमलर को बहुत संघर्ष करना पड़ा। यह काम इतना नया था कि उसके लिए आवश्यक संसाधन मौजूद नहीं थे। पेट्रोल पंप या गैस स्टेशन भी नहीं थे। ग्राहक को गैसोलिन फार्मेसी से खरीदना पड़ता था। कार सुधारने वाले मैकेनिक भी नहीं मिलते थे। तब कारों की रफ्तार बहुत धीमी थी, इसलिए अधिक मांग नहीं थी। मैमलर कंपनी के लिए महत्वपूर्ण मोड़ उस दिन आया जब ऑस्ट्रिया के अमीर बैंकर और कार रेसर एमील जेलिनेक ने उनसे ज्यादा तेज व बेहतर कार बनाने को कहा। उन्हें ऐसी कार चाहिए थी जिसमें इंजन न केवल आगे लगा हो बल्कि अधिक शक्तिशाली भी हो। कार में चेसिस नीचे हो, वह स्टाइलिश दिखे और तेज गति वाली हो। यह सुनकर डैमलर बोले, 'सर, इस तरह तो मेरी कंपनी को बड़ा घाटा हो जाएगा। ऐसे में कार की लागत काफी बढ़ जाएगी। इतनी मंहगी कार कोई भी नहीं खरीदेगा।' इस पर एमील जेलिनेक बोले, 'इस मॉडल की पहली 36 कारें मैं खुद खरीद लूंगा। पर हां, इसका नाम मेरी 11 साल की बेटी मर्सिडीज के नाम पर होना चाहिए। ऊंची कीमत रखकर ही मर्सिडीज प्रेस्टिज ब्रांड बन सकती है।' यह सुनकर डैमलर ने ऐसी ही स्टाइलिश कार बनाई जिसे मर्सिडीज नाम दिया गया। कुछ ही समय में यह मॉडल इतना लोकप्रिय हुआ कि जल्द ही डैमलर कंपनी की सभी कारें मर्सिडीज नाम से बिकने लगीं। आज इस घटना को लगभग 116 वर्ष बीत चुके हैं, लेकिन मर्सिडीज ब्रांड आज भी खूब चल रहा है। मर्सिडीज की टैग लाइन है –या तो सर्वश्रेष्ठ या कुछ नहीं।

11. लोहिया का जवाब

राममनोहर लोहिया के पिता की मृत्यु का समाचार जैसे ही उनके मित्रों को मिला उन्होंने जी–जान से कोशिश की कि सरकार लोहिया जी को पैरोल पर छोड़ दे ताकि अपने पिता को वह अपनी भावपूर्ण श्रद्धांजलि दे सकें। मित्रों की कोशिश बेकार नहीं गई। सरकार उन्हें छोड़ने के लिए राजी हो गई। पर इस कार्य को करने में अधिकारियों के मन में एक दबा–छुपा उपकार भाव भी उत्पन्न हो गया था कि वह उन पर विशेष कृपा कर रहे हैं। वह अपने को स्वस्थ–सहज करने का प्रयत्न करते हुए बैठे थे कि इतने में उनके एक मित्र ने रिहाई का समाचार उन तक पहुंचाया और बोला– 'चलो, अब चलने की तैयारी करो।' 'पर रिहाई किसकी और क्यों?' उनका स्वर आश्चर्य से भरा था। 'तुम्हारी! क्या पिताजी को श्रद्धांजलि नहीं देने जाना है?' लोहिया जी बोले– 'कर्तव्य से पलायन को श्रद्धांजलि का नाम मत दो। मुझे किसी की कृपा नहीं चाहिए। पिताजी सारी उम्र जिन आदर्शों के लिए अपने प्राण की बूंदों को निचोड़ते रहे, उन्हें मैं ठुकरा नहीं सकता।' फिर वह कुछ देर रुके। आंखों की कोरों में ढुलक आए अपने आंसुओं को पोंछा। फिर बोले– 'वास्तविक श्रद्धा तो आदर्शों के प्रति समर्पण का नाम है और जब आदर्श न रहे तो श्रद्धा कैसी? और कर्तव्य! वह भी तो आदर्शों के प्रति समर्पण का सक्रिय रूप है। मैं अपने पिता को इसी रूप में यहां से श्रद्धांजलि अर्पित कर रहा हूं और करता रहूंगा।' उनकी इस सच्ची श्रद्धांजलि की प्रखरता के सामने कागज के उस छोटे से टुकड़े पर लिखे शब्द 'फादर डेड' निस्तेज पड़ चुके थे। अपने पिता को ऐसी सच्ची श्रद्धांजलि देने वाले महापुरुष डॉ. राम मनोहर लोहिया ही हो सकते थे। उनसे आज यही शिक्षा ली जा सकती है कि जीवन में आदर्शों पर चलना जरूरी है, सिर्फ बातें बनाते रहने से कुछ नहीं हो जाता।

12. स्वप्न देखने की शक्ति

एक बार की बात है। हडसन नदी के किनारे भारी भीड़ जमा थी। वहां मौजूद सभी लोग अपनी समझ से एक मूर्खतापूर्ण काम की हंसी उड़ाने के लिए आए थे। उस काम को करने वाला मूर्ख था– रॉबर्ट फुल्टन। उसने 'क्लोरमोंट' नामक एक वाष्प जलयान का निर्माण किया था। वह उसी का प्रदर्शन करने जा रहा था। रॉबर्ट फुल्टन के मित्र उसे समझा रहे थे कि वह ऐसा जोखिम भरा काम न करे। क्योंकि हडसन नदी की तेज धारा में उसका जलयान डूब जाएगा और उसके साथ वह भी नहीं बच सकेगा। आज तक बिना चप्पुओं के हडसन नदी की लहरों को काटकर किसी ने जलयान नहीं चलाया है। लेकिन फुल्टन ने किसी की बात नहीं सुनी और उनकी परवाह किए बगैर अपने काम में व्यस्त था। उसने अपना सारा धन लगाकर कई वर्षों में यह जहाज बनाया था। उसने किसी की बात नहीं मानी तो लोगों ने यही कहा कि वह मूर्ख ही नहीं, पागल भी है। उसे मरने का शौक है। देखते ही देखते फुल्टन ने हडसन नदी की तेज धारा में अपना जहाज उतार दिया। नदी की धारा को चीरता हुआ जहाज तेजी से आगे बढ़ने लगा। लोग आश्चर्य से उसे देख रहे थे। थोड़ी ही देर में जहाज नदी के दूसरे तट पर पहुंच गया। फुल्टन अपनी सफलता पर मुग्ध था। उसके एक मित्र ने पूछा, 'तुमने इतना जोखिम भरा काम अकेले कैसे कर लिया? क्या तुम्हें डर नहीं लगा?' फुल्टन ने कहा, 'मानव को परंपरा से जो उत्तराधिकार प्राप्त हुआ है, उसमें सबसे दिव्य और चमत्कारिक है स्वप्न देखने की शक्ति। यदि हम आज कष्ट उठाते हैं तो कुछ चिंता की बात नहीं है। लेकिन हमें विश्वास होना चाहिए कि कल हमारे दिन बदलेंगे। जो स्वप्न देखता है, उसके लिए हडसन पार करना तो कुछ नहीं है। पत्थरों की दीवारें भी उसे बंदी नहीं बना सकतीं। फिर डर किस बात का।'

13. मिथ्या उपलब्धि

किसी वन में एक बहुत बड़े ऋषि का आश्रम था। उन्होंने कठिन तपस्या करके अनेक सिद्धियां प्राप्त कर ली थीं। इसी कारण उनमें घमंड आ गया था। ऋषि का घमंड दूर करने के लिए एक दिन भगवान ने खुद उनके पास जाने का निश्चय किया। उन्होंने एक साधु का रूप धारण कर लिया और ऋषि के आश्रम जा पहुंचे। भोजन और कुछ देर विश्राम कर लेने के बाद दोनों सत्संग के लिए बैठ गए। तभी साधु के रूप में आए भगवान ने ऋषि से पूछा, 'महाराज, मैंने सुना है कि आपने अनेक प्रकार की सिद्धियां प्राप्त कर ली हैं। क्या आप किसी को मार भी सकते हैं?' ऋषि बोले, 'आपने ठीक सुना है। मैंने तपस्या करके अनेक सिद्धियां प्राप्त कर ली हैं और मैं जिसे चाहूं, उसे मार सकता हूं।' तभी आश्रम के पास से एक हाथी गुजरता नजर आया। उसे देखकर कर साधु ने ऋषि से कहा, 'क्या आप इस विशालकाय हाथी को मार सकते हैं?' ऋषि ने गर्व से कहा, 'यह कौन–सी बड़ी बात है!' उन्होंने धरती से थोड़ी सी मिट्टी उठाई, मंत्र फूंका और देखते ही देखते हाथी पर दे मारी। इसके तुरंत बाद उस विशालकाय हाथी के प्राण–पखेरू उड़ गए। साधु ने कहा, 'आपने मेरे कहने पर इस हाथी को मारा है, इसलिए अब इसकी हत्या का पाप मुझे ही लगेगा। अतः महाराज, आप इसे अब जीवित कर दीजिए।' ऋषि ने पुनः अपना मंत्र फूंका और हाथी को जीवित कर दिया। साधु बोले– 'महाराज, आपमें तो विलक्षण शक्ति है। आपने हाथी को मार दिया और उसे पुनः जीवित भी कर दिया। परंतु इससे आपको या किसी को क्या मिला? इन चमत्कारों का क्या अर्थ है? इन सिद्धियों का प्रयोजन क्या है?' साधु की बात सुनकर ऋषि सोच में पड़ गए। उन्हें समझ आ गया कि जिस उपलब्धि पर उन्हें गर्व है, वह तो मिथ्या है। मिथ्या उपलब्धि पर गर्व कैसा?

14. कल्पना के क़िले से बाहर

इंग्लैंड के इतिहास में एल्फ्रेड का नाम बड़े ही सम्मान से लिया जाता है। एल्फ्रेड ने प्रजा की भलाई के लिए अनेक ऐसे साहसिक कार्य किए जिनके कारण उन्हें सब लोग एल्फ्रेड द ग्रेट के नाम से पुकारने लगे। प्रारंभ में एल्फ्रेड भी एक साधारण राजा की तरह खाओ–पीओ और वैभव–विलास में डूबे रहो वाला जीवन जी रहा था। उसकी विलासिता का परिणाम यह निकला कि एक दिन उसका समूचा राज्य शत्रुओं ने हड़प लिया और उसे गद्दी से उतारकर मार भगाया। एल्फ्रेड को अपना पेट भरने तक के लिए परेशान होना पड़ा। उसे एक किसान के घर नौकरी करनी पड़ी। उसे बर्तन मांजने, पानी भरने और चौका करने का काम सौंपा गया। उसके काम की देख–रेख किसान की पत्नी किया करती थी। एल्फ्रेड छिपे वेश में जिंदगी गुजारने लगा। एक दिन किसान की पत्नी को किसी काम से बाहर जाना पड़ा। बटलोई पर दाल चढ़ी थी सो उसने एल्फ्रेड से कहा, 'तब तक मैं वापस नहीं आ जाती, तुम दाल का ध्यान रखना।' अपना काम पूरा करके जब वह लौटी तो उसने देखा एल्फ्रेड एक ओर बैठा किसी सोच में डूबा है। उसे इस बात का अंदाजा तक नहीं कि चूल्हे पर चढ़ी बटलोई की सारी दाल जल चुकी है। स्त्री ने कहा, 'मूर्ख, लगता है तुझ पर एल्फ्रेड की छाया पड़ गई है। तू भी उसकी तरह मारा–मारा घूमेगा क्या? कल्पनाएं करना छोड़ और काम करने में लग गया।' उस बेचारी किसान की पत्नी को क्या पता था कि जिससे वह बात कर रही है, वह खुद एल्फ्रेड ही है। पर एल्फ्रेड को अपनी भूल का पता चल गया। उसने यह बात गांठ बांध ा ली और निश्चय कर लिया कि कल्पना के किले बनाते रहने से कोई लाभ नहीं। एल्फ्रेड एक बार फिर सहयोगियों से मिला। उसने धन संग्रह किया, सेना जुटाई और दुश्मन पर चढ़ाई करके लंदन को फिर से जीत लिया।

15. सादगी का प्रभाव

एक बार महात्मा गांधी काशी आए, वह काशी विद्यापीठ में ठहरे। उनके साथ मदनमोहन मालवीय, राजर्षि टंडन, राजेंद्र प्रसाद और कई अन्य प्रमुख नेता भी थे। विद्यापीठ के परिसर में एक कुंआ था। एक स्वयंसेवक को जिम्मेदारी दी गई कि वह नेताओं के स्नान की व्यवस्था उनके कमरे के पास ही करे। वह कुंए से पानी निकाल रहा था कि तभी केवल धोती लपेटे खुले बदन राजेंद्र बाबू वहां पहुंचे। उन्होंने उस स्वयंसेवक से कहा, 'भइया, एक मिनट के लिए मुझे बाल्टी दे दो। मैं कुएं से पानी निकालकर स्नान कर लूं।' स्वयंसेवक राजेन्द्र बाबू को पहचानता नहीं था। उसने कहा, 'बाल्टी अभी खाली नहीं है। अभी तो मैं बाहर से आए बड़े–बड़े नेताओं के कमरे में पानी पहुंचा रहा हूं।' इस पर राजेन्द्र बाबू मुस्कराए और बोले, 'कोई बात नहीं। अभी तुम अपना काम कर लो। जब बाल्टी खाली हो जाए तो दे देना।' इतना कहकर वह कुंए के चबूतरे पर बैठ गए। कुछ देर के बाद ठक्कर बापा आए। उन्होंने राजेंद्र बाबू को बैठा देखकर कहा, 'अरे, राजेंद्र बाबू आप यहां कैसे बैठे हुए हैं। चलिए कमरे में। यह आदमी आपके लिए वहीं पानी पहुंचा देगा। वहीं नहा लीजिएगा।' राजेंद्र बाबू का नाम सुनते ही स्वयं सेवक सकपका गया। उसने बाल्टी को कुंए पर रखा और दौड़कर राजेंद्र बाबू के पांव पकड़ने के लिए झुका। राजेंद्र बाबू ने उसे झुकने से पहले ही पकड़ लिया और स्नेहपूर्वक कहा, 'भइया, तुम यह क्या कर रहे हो।' स्वयंसेवक क्षमा याचना करने लगा। राजेंद्र बाबू बोले, 'तुमने तो कोई गलती की ही नहीं तो फिर क्षमा क्यों मांग रहे हो। तुम तो अपना काम ईमानदारी और निष्ठा से कर रहे हो।' यह कहकर राजेंद्र बाबू ने स्वयं पानी निकालकर स्नान किया। उनकी सादगी देखकर स्वयंसेवक भाव–विभोर हो गया।

16. सुकरात की सीख

यूनान का सबसे धनी व्यक्ति एक बार अपने समय के सबसे बड़े विद्वान सुकरात से मिलने गया। उसके पहुंचने पर सुकरात ने जब उसकी ओर ध्यान ही नहीं दिया तो उसने कहा–'क्या आप जानते हैं कि मैं कौन हूं? सुकरात ने कहा– 'जरा यहां बैठो। आओ, समझने की कोषिष करें कि तुम कौन हो?' सुकरात ने दुनिया का नक्षा उसके सामने रख दिया और उस धनी व्यक्ति से कहा–'बताओ तो जरा, इसमें एथेंस कहां है?' वह बोला– 'दुनिया के नक्षे में एथेंस तो एक बिंदु भर है।' उसने एथेंस पर उंगली रखी और कहा – 'ये है एथेंस।' सुकरात ने पूछा– 'इस एथेंस में तुम्हारा महल कहां है?' पर वहां तो बिंदु ही था, उसमें महल वह भला कहां से बताए। फिर सुकरात ने कहा –'अच्छा बताओ, उस महल में तुम कहां हो? यह नक्षा तो पृथ्वी का है। अनंत पृथ्वियां हैं, अनंत सूर्य हैं, तुम हो कौन?' कहते हैं, जब वह जाने लगा तो सुकरात ने वह नक्षा यह कहकर उसे भेंट कर दिया कि इसे सदा अपने पास रखना और जब भी अभिमान तुम्हें जकड़े, यह नक्षा खोलकर देख लेना कि कहां है एथेंस? कहां है मेरा महल? और फिर मैं कौन हूँ? बस अपने आपसे पूछ लेना। वह धनी व्यक्ति सिर झुकाकर खड़ा हो गया तो सुकरात ने कहा– 'अब तुम समझ गए होगे कि वास्तव में हम कुछ नहीं हैं। लेकिन कुछ होने की अकड़ हमें पकड़े हुए है। यह हमारा दुख है, यही हमारा नरक है। जिस दिन हम जागेंगे, चारों ओर देखेंगे तो कहेंगे कि इस विषाल ब्रम्हांड में हम कुछ नहीं हैं। तभी हमें परमात्मा की विराटता का वास्तविक अहसास होगा। तभी हमारे मन में उसके प्रति समर्पण का भाव जागेगा। अन्यथा अहंकार हमें जीवन में इसी प्रकार भटकाता रहेगा। इसलिए जागो और अपना जीवन सफल करो।' उस धनी व्यक्ति ने उस दिन से घमंड करना छोड़ दिया।

17. ट्विटर का विचार

जैक डोर्सी बचपन से ही जिज्ञासु प्रवृत्ति के थे। उन्हें कम्प्यूटर पर नक्षे बनाना पसंद था। वह घंटों पुलिस और ऐंबुलेंस फ्रिक्वेंसी सुनते थे। इसके बाद वे दुर्घटनास्थल या अस्पताल तक जल्दी पहुंचने वाले आपातकालीन वाहनों का मार्ग बनाते थे। कुछ समय बाद वे एक ऑडियो कंपनी में नौकरी करने लगे। ऑडियो कंपनी पॉडकास्ट्स का डायरेक्टरी सबंधी व्यवसाय करना चाहती थी, लेकिन जब एप्पल ने आईट्यून्स में डायरेक्टरी षामिल कर ली, तो ऑडियो की योजनाओं पर पानी फिर गया। ऑडियो कंपनी के मालिक इवान विलियम्स ने अपने स्टाफ से कुछ नए विचार लाने के लिए कहा। एक दिन संचालकों के 'विचार—मंथन' सत्र में जैक डोर्सी ने ट्विटर का विचार सामने रखा। संचालकों ने इस बारे में विस्तार से जानना चाहा तो जैक डोर्सी बोले, 'ट्विटर के माध्यम से 140 षब्दों का संदेष विष्व भर के लोग एक—दूसरे को भेज सकेंगे। आज अमेरिका में एसएमएस की लोकप्रियता बढ़ रही है। ऐसे में इस नए विचार के साथ आगे बढ़ा जा सकता है।' संचालक मंडल को जैक डोर्सी का यह विचार अच्छा लगा। इसके बाद जैक इस इंटरनेट सेवा पर काम करने लगे। उन्होंने दो सप्ताह की मेहनत से ट्विटर का प्रोटोटाइप बना लिया और 21 मार्च 2006 को विष्व का पहला ट्विटर संदेष भेजा। ऑडियो के मालिक इवान विलियम्स भी जैक डोर्सी के साथ जुड़ गए। जैक डोर्सी ने इसको ट्विटर नाम दिया जिसका षाब्दिक अर्थ है 'महत्वहीन जानकारी का छोटा संप्रेषण और चिड़ियों का चहचहाना। 15 जुलाई 2006 से ट्विटर सबके लिए उपलब्ध हो गया। काफी समय लगा, लेकिन डोर्सी ने धैर्य नहीं छोड़ा। आज ट्विटर विष्व का तीसरा सबसे बड़ा सोषल नेटवर्क है। इसके पचास करोड़ से अधिक सदस्य रोज 34 करोड़ से अधिक ट्वीट करते हैं।

18. न कोई बड़ा, न कोई छोटा

नव वर्ष के प्रारंभ में बैसाख पर गुरु गोबिंद सिंहजी ने एक नई व्यवस्था स्थापित करने का संकल्प किया। इस पथ में हरेक धर्म के उस व्यक्ति का स्वागत था जो जाति का भेद त्याग, पद और धर्म की चिंता किए बगैर, मानवमात्र की सेवा को तत्पर और पाखंड से दूर हो। गुरुजी को भविष्य में सबके लिए समान राष्ट्र बनाना था। इसके लिए उन्होंने बैसाखी का दिन चुना। आनंदपुर में विषाल जनसमूह के सामने गुरुजी नंगी तलवार खींचकर खड़े हो गए और गरज कर बोले, 'मुझको ऐसे सिख की जरूरत है, जो अभी इसी क्षण अपनी गर्दन मुझे भेंट कर सके। मेरी तलवार ऐसे सिख के खून की प्यासी है, जिसने मेरे आगे बलिदान करना सीखा हो।' खामोष सभा सोच रही थी कि आखिर गुरुजी का उद्वेष्य क्या है? पहले कभी किसी गुरु ने अपने भक्त का सिर नहीं मांगा था। गुरुजी ने फिर कहा, 'क्या इस भीड़ में कोई नहीं, जो यह कहे कि मैं आपको अपना सिर देता हूं? जो गुरुजी के लिए अपना सिर हथेली पर रखकर समर्पित कर दे?' सभा में अब भी सन्नाटा छाया रहा। गुरुजी ने फिर तीसरी बार पूछा तो लाहौर का दयाराम आगे बढ़ा। उसने कहा, 'गुरुजी, मैं अपना सिर आपकी सेवा में पेष करता हूं। आपके किसी काम आ सका तो मैं खुद को धन्य समझूंगा।' गुरुजी उसे एक खेमे के अंदर ले गए। फिर गुरुजी बारी–बारी पांच षिष्यों दयाराम, धरमदास, हिम्मतराय, मोहकम चंद, साहिब चंद को खेमे में ले गए। जब ये पांचों बाहर निकले तो नीली पगड़ी, लंबे–ढीले कुर्ते, कमरबंद और कछहैरे पहने कमर पर तलवार लटकाए सैनिकों जैसे लग रहे थे। सारी सभी सतश्री अकाल के स्वर से गुंजायमान हो गई। पांचों प्यारे अलग जाति के थे। इस तरह बैसाखी पर्व पर गुरुजी ने 'न कोई बड़ा, न कोई छोटा' की नई रीत चलाई।

19. सांसारिकता का मोह

एक बार गुरु वशिष्ठ से उनके एक शिष्य ने पूछा, 'गुरुदेव, सांसारिकता के मोह में फंसे संशयग्रस्त प्राणी अपने जीवन में उन्नति क्यों नहीं कर पाते? वशिष्ठ ने उसे एक कथा सुनाते हुए इस प्रश्न का उत्तर इस प्रकार दिया, 'आम के एक वृक्ष पर खूब फल लदे हुए थे। उनमें एक पका हुआ आम भी था। वह पका आम वृक्ष में लगे रहने का अपना मोह नहीं छोड़ पाया। एक दिन पेड़ का रखवाला पके आमों की खोज करता हुआ वृक्ष पर चढ़ गया और सभी पके आम तोड़ने लगा, पर वह पका आम पत्तों की आड़ में ऐसा छिपा कि रखवाले के हाथ नहीं आया। रखवाला नीचे उतर गया। पका हुआ आम तरह–तरह के विचारों में खोया रहा। दूसरे दिन उसने देखा कि उसके सभी पड़ोसी पके आम जा चुके थे। अब उसे अपने मित्र आमों की याद सताने लगी। वह सोचता कि नीचे कूद जाऊं और अपने मित्रों से जा मिलूं। मगर फिर उसे पेड़ का मोह अपनी ओर खींचने लगता। आम इसी उधेड़बुन में पड़ा रहा। संशय का यह कीड़ा उसे धीरे–धीरे खाने लगा। शीघ्र ही आम सूखने लगा और एक दिन वह बस गुठली और सूखे छिलके के रूप में ही रह गया। अब उसकी तरफ कोई नहीं देखता था। अपना आकर्षण खो देने के कारण आम पछताने लगा। सोचने लगा कि वह संसार की कोई सेवा भी कर सका और उसका अंत भी ऐसा दुखद होने को है। आखिर एक दिन हवा का झोंका आया और वह डाली से टूटकर गिर गया। वत्स, संसार में रहने वाले प्राणियों का भी सांसारिकता से मोह नहीं छूटता। वे ज्ञानवान होकर भी यही सोचते रहते हैं कि अब निकलें तब निकलें। फिर अंत में एक दिन ऐसा आता है कि उन्हें संसार छोड़कर जाना ही पड़ता है। भ्रम से ग्रस्त लोग उसी आम की तरह न इधर के रहते हैं न उधर के। शिष्य को अपने प्रश्न का उत्तर मिल गया था।

20. जीवन–मरण का प्रश्न

एक समय ज्ञान की खोज में तीन साधु हिमालय पहुंचे। वहां तीनों को जोरों की भूख लगी। मगर उन्होंने पाया कि उनके पास दो ही रोटियां शेष रह गई थीं। तीनों ने तय किया कि वे उस दिन भूखे ही सो जाएंगे। ईश्वर जिसके सपने में आकर रोटी खाने का संकेत देंगे, वही ये रोटियां खाएगा। ऐसा निश्चय कर वे तीनों साधु सो गए। आधी रात के समय अचानक तीनों साधु उठे और एक–दूसरे को अपना–अपना सपना सुनाने लगे। पहले साधु ने कहा–मैं सपने में एक अनजानी जगह पर जा पहुंचा। वहां बहुत शांति थी और वहां मुझे ईश्वर के दर्शन हुए। उन्होंने मुझसे कहा कि तुमने जीवन में सदा त्याग ही किया है। इसलिए ये रोटियां तुम्हें ही खानी चाहिएं। दूसरे साधु ने भी सुनाना शुरू किया– मैंने सपने में देखा कि भूतकाल में तपस्या करने के कारण मैं एक महात्मा बन गया हूं और अकस्मात् मेरी मुलाकात ईश्वर से होती है। सपने में ही वे मुझसे कहते हैं कि लंबे समय तक कठोर तप करने के कारण तुम्हारे पास पुण्य का अथाह भंडार है। इस पुण्य की बदौलत रोटियों पर पहला हक तुम्हारा बनता है, तुम्हारे मित्रों का नहीं। अब तीसरे साधु की बारी आई। उसने साफ शब्दों में कहा–मैंने सपने में कुछ नहीं देखा। न मेरे सपने में ईश्वर आए और न उन्होंने मुझे रोटी खाने को कहा, पर मैंने वो रोटियां खा ली हैं। यह सुनकर दोनों साधु क्रोधित हो गए। उन्होंने तीसरे साधु से पूछा– यह निर्णय लेने से पहले तुमने हमें क्यों नहीं उठाया? तब तीसरे साधु ने कहा–कैसे उठाता? तुम दोनों तो ईश्वर से बातें करने में लगे हुए थे। लेकिन ईश्वर ने मुझे नींद से उठाया और भूखा मरने से बचा लिया। इसीलिए लगता है, बिल्कुल सही कहा गया है कि जीवन–मरण का प्रश्न हो तो कोई किसी का मित्र नहीं होता। व्यक्ति वही काम करता है जिससे उसका जीवन बच सके।

21. बीता हुआ कल

एक बार एक संत ने अपने अनुयायियों को उपदेष देते हुए कहा – 'हर किसी को हमारी इस धरती मां की तरह सहनषील व क्षमाषील होना चाहिये। लोग इसके साथ कुछ भी करें, किंतु यह बदले में उन्हें लाभ ही देती है। हमें हर हाल में क्रोध से बचना चाहिए। क्रोध ऐसी आग है जो सामने वाले व्यक्ति से पहले खुद क्रोध करने वाले को जलाती है। यह सुनते ही उपस्थित श्रोताओं में से एक व्यक्ति उठा और जोर–जोर से कहने लगा– मैं यह नहीं मानता। यह सब कहना आसान है, किंतु करना मुष्किल। लोग व्यर्थ ही आपकी पाखंडपूर्ण बातें सुनकर आपको मान देते हैं। आपकी ये बातें आज के समय में कोई अर्थ नहीं रखतीं।' संत चुपचाप बैठे रहे। आखिर में वह व्यक्ति भुनभुनाते हुए बाहर निकल गया। अगले दिन जब उस व्यक्ति का क्रोध षांत हुआ और उसने संत की बातों पर मनन किया तो उसे लगा कि वे सौ फीसदी सही कह रहे थे। उसे अपने किए पर पछतावा होने लगा और वह संत से क्षमायाचना करने उनके आश्रम में पहुंचा और उनके चरणों में गिरकर बोला– 'मुझसे बड़ी भूल हो गई। मेरा अपराध क्षमा करें।' संत ने पूछा – 'तुम कौन हो भाई और मुझसे क्षमा क्यों मांग रहे हो?' व्यक्ति बोला – मैं वही हूं, जिसने कल आपको अपमानित किया था। मैं अपने बर्ताव के लिए षर्मिंदा हूं। मुझे माफ कर दें। संत ने प्रेमपूर्वक कहा– 'कल जो हुआ, उसे तो मैं कब का भूल चुका और तुम अब भी वहीं अटके हुए हो। तुम्हें अपनी गलती का एहसास हो गया और तुमने पष्चाताप कर लिया, यही बहुत है। अब आज में प्रवेष करो। बुरी बातें व घटनाएं याद करते रहने से वर्तमान और भविष्य दोनों बिगड़ते जाते हैं। बीते हुए कल के कारण आज को मत बिगाड़ो। यह सुनकर वह व्यक्ति एक बार फिर संत के समक्ष नतमस्तक हो गया।

22. संत का प्रभाव

गुलामी के दिनों में एक मस्तमौला संत हुए। वह हर समय ईष्वर के स्मरण में ही लगे रहते थे। एक बार की बात है, वह घूमते – घूमते किसी जंगल से गुजर रहे थे, तभी गुलामों के कारोबारियों के एक गिरोह की निगाह संत पर पड़ी। गिरोह के सरगना ने संत का स्वस्थ षरीर देखा तो सोचा कि इस व्यक्ति की तो खूब अच्छी कीमत मिल सकती है। उसने मन ही मन तय कर लिया कि उन्हें पकड़कर बेच दिया जाए। बस फिर क्या था, उसके इषारे पर गिरोह के सदस्यों ने संत को घेर लिया। संत ने कोई विरोध नहीं किया। गिरोह के सदस्यों ने जब संत को बांधा, तब भी संत चुप्पी साधे रहे। संत की चुप्पी देख एक आदमी से रहा नहीं गया। उसने पूछा, 'हम तुम्हें गुलाम बना रहे हैं और तुम षांत हो। हमारा विरोध क्यों नहीं कर रहे?' संत ने उत्तर दिया, 'मैं तो जन्मजात मालिक हूं। कोई मुझे गुलाम नहीं बना सकता। मैं क्यों चिंता करूं। गिरोह के सदस्य संत को गुलामों के बाजार में ले गए और आवाज लगाई,' एक हट्ठा–कट्ठा इंसान लाए हैं। किसी को गुलाम की जरूरत हो तो बोली लगाओ।' यह सुनना था कि संत ने उससे भी अधिक जोर से आवाज लगाई, 'यदि किसी को मालिक की जरूरत हो तो मुझे खरीद लो। मैं अपनी इंद्रियों का मालिक हुं। गुलाम तो वे हैं जो इंद्रियों को पीछे भागते हैं और षरीर को ही सब कुछ समझते हैं।' संत की आवाज उधर से गुजर रहे कुछ लोगों ने सुनी। ये समझ गए कि यह पुकारने वाला अवष्य ही कोई आत्मज्ञानी व्यक्ति है। वे सभी भक्त संत के चरणों में झुक गए। भक्तों की भीड़ देख गिरोह के सदस्य घबरा गए और संत को वहीं छोड़कर भागने लगे। भक्तों ने उन्हें पकड़ लिया, पर संत ने उन्हें छोड़ देने को कहा। गिरोह के सरगना ने संत से माफी मांगी और अपना धंधा छोड़ देने का संकल्प किया।

23. अनुशासन और उदारता

मध्यरात्रि के बाद नैपोलियन की नींद अचानक खुली तो उसने देखा कि कार्यालय में दीपक जल रहा है। वह कार्यालय में जा पहुंचा और वहां एक कर्मचारी को काम करता देख उसने पूछा – 'इस समय क्या काम कर रहे हो?' कर्मचारी झिझकता हुआ कहने लगा– 'मेरे ऊपर बहुत कर्जा चढ़ गया है। साहूकार आये दिन मुझे तंग कर रहे हैं। मैं बहुत चिंताग्रस्त हूं। इसी से आजकल मुझे नींद नहीं आती।' नैपोलियन ने मुझे पूछा – 'तुम पर कितना कर्ज है?' अधिकारी ने बताया दस हजार फ्रैंक।' नैपोलियन ने कहा, 'मैं तुम्हें पूरे एक हजार फ्रैंक मासिक वेतन देता हूं, फिर भी तुम पर इतना कर्ज चढ़ा हुआ है। मतलब यह है कि तुम बेहिसाब खर्च करते हो। व्यसनों में या खराब कामों में खर्च करते होंगे। मैं ऐसे अधिकारों को अपने पास नहीं रख सकता। पर जाओ। समझो इसी समय से मैंने नौकरी से निकाल दिया।' वह बेचारा उठा और घर चल दिया। परिवार बड़ा था। कमाने वाला वह अकेला। इधर कर्जे का बोझ उधर नौकरी भी छूट गई। 'अब क्या होगा?' सोचते–सोचते उसने किसी तरह बची हुई रात काटी। सुबह हुई। किसी ने दरवाजा खटखटाया। उसने दरवाजा खोला तो नैपोलियन का दूत उपस्थित था। उसने सोचा वह नौकरी से हटा देने का आदेष लाया होगा। कांपते हाथों से उसने लिफाफा लिया। देखा उसमें एक पत्र था और दस हजार फ्रैंक रखे थे। लिखा था, 'मैंने तुम्हारे बारे में विचार किया और इस नतीजे पर पहुंचा कि तुम्हें निकालना ठीक नहीं। जो मेरा आश्रित हो गया, उसके परिवार की भी मुझे चिंता करनी चाहिए। इसीलिये मैं निजी खजाने से ये दस हजार फ्रैंक भेज रहा हूं। इनसे तुरंत कर्जमुक्त हो जाओ। फिर ऐसी स्थिति न आने देना।' नैपोलियन का अनुषासन और उदारता देख कर्मचारी की आंखें नम हो गई।

24. धर्म का मर्म

गोपाल भांड बड़ी उदार प्रकृति के थे। उनके तीन मित्र थे, एक गायक राम प्रसाद, दूसरे व्यापारी उगजू गोसाई और तीसरे एक मौलवी। चारों मिलकर मौज करते थे। किसी ने पूछा, 'तुम चारों में मित्रता कैसे है? चारों के मुख तो चार भिन्न दिषाओं की ओर हैं।' गोपाल बोले, 'यह हमारे गुरु की षिक्षा है।' पूछा गया तुम्हारे गुरु कौन हैं?' गोपाल ने कहा, 'घर आने पर गोपाल ने अपनी चार गौएं दिखाईं, जो चारों ओर से एक ही जगह घास चर रही थीं। गोपाल बोले, 'ये रहे मेरे 'गोरु'। 'गोरु' गाय के अर्थ में भी प्रयोग होता है। इसी आधार पर गोपाल ने बता दिया कि ये चारों मित्र अलग–अलग देवताओं के उपासक होकर भी एक ही आनंद के स्त्रोत से प्यास मिटाया करते हैं। गोपाल भांड आडंबरों के समर्थक न थे। वह मानव धर्म को सर्वश्रेष्ठ मानते थे। एक बार बहुत से हिंदू और मुसलमान तीर्थयात्रा के लिए निकले। अधिकांष तीर्थयात्री सफलतापूर्वक यात्रा करके लौटे और उनका स्वागत नगर–वासियों ने किया। किंतु एक मुसाफिर मक्का षरीफ जाते हुए आधे रास्ते से लौट आया और दूसरा जगन्नाथपुरी के आधे रास्ते से। गोपाल को जब इनके लौटने का हाल मालूम हुआ तो उन्होंने उनकी अच्छी अभ्यर्थना की। लोगों ने आष्चर्य से पूछा कि यह क्यों? गोपाल ने कहा, 'इन यात्रियों को तीर्थ तक पहुंचे बिना पुण्य मिल गया। मक्का षरीफ का यात्री अपनी सारी जायदाद खर्च करके अपने बीमार सहयात्री की सेवा करता रहा। उसके पास अब कुछ भी षेष नहीं रहा। उसका हज वहीं कबूल हो गया। दूसरे यात्री ने पुरी पहुंचने से पहले ही किसी गांव में पानी का संकट देखकर अपना सारा धन लगा कर जलाषय खुदवाया और खाली हाथ लौट आया। इन दोनों की यात्रा भगवान के दरबार में सार्थक सिद्ध हुई। इसलिए मैंने इनका स्वागत किया।